International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 126-128

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 126-128
www.allresearchjournal.com
Received: 20-05-2017
Accepted: 22-06-2017

Dr. Rajesh Kumar
Associate Professor,
Department of Hindi, NIILM University Kaithal, Haryana, India

Krishna Devi
Police Line, Fatehabad, Haryana, India

Correspondence
Dr. Rajesh Kumar
Associate Professor,
Department of Hindi, NIILM University Kaithal, Haryana, India

रामनिवास 'मानव' के काव्य–शैली का मनोवैज्ञानिक विवेचन

Dr. Rajesh Kumar and Krishna Devi

प्रस्तावना

डॉ0 रामनिवास 'मानव' ने अनेकानेक ऐसे विलक्षण का चयन कर अपने काव्य का विशय बनाया हैं। रामनिवास 'मानव' के साहित्य की साहित्य–शैली पर विभिन्न मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का प्रभाव आँका जा सकता है। रामनिवास 'मानव' की कृतियों में भारतीय संस्कृति के षाष्वत मूल्यों का सार समाविश्ट है। 'मानव' के साहित्य का सर्वोपरि गुण उसका वैयक्तिक वैशिष्ट्य है। जीवन के वैयक्तिक अनुभवों की भाव–प्रवण अभिव्यक्ति ने इनको अन्य कवियों से पृथक् ही नहीं विलक्षण भी कर दिया। अपने मूल स्वभाव से चालित इन अन्वेषियों ने भाषा के प्रयोग में मनोदशाओं और चेष्टाओं के ढंग में, अनुभूति की अभिव्यक्ति तथा सौन्दर्य की अवधारणा में सर्वथा निजी शैली को बनाए रखा। 'मानव' की कविताओं की मूल उत्स–भूमि कवि का अवचेतन मन है। व्यक्ति बाह्य जगत् से जितने भी अनुभव प्राप्त करता है वे उसके अंतरमन में स्थित पूर्ण आनंद की आकांक्षा को संतुष्ट नहीं कर पाते। अंतरंग की अपूर्ण लालसाएं बहिरंग के अपूर्णत्व से टकराकर मानस में एक विशेष अनुक्रिया को जन्म देती हैं तथा व्यक्ति अपने भीतर एकत्रा भावानुभूतियों को इस प्रक्रिया के उन्नयन द्वारा व्यक्त करता है। 'मानव' के साहित्य इसी प्रतिक्रिया का प्रतिपफल है। इनका अवचेतन मूलक अंतर्वृत्तियों का आग्रह इतना सशक्त है कि उसकी अवमानना के परिणामस्वरूप ये निरंतर रचना प्रणयन की ओर रत रहते हैं। वस्तुतः कवि आभ्यांतर अहं से आक्रांत है, उसकी कुंठित अहंवृत्ति बाह्य जगत् को हेय समझती हुई अपने मनोजगत् की प्रतिष्ठा करना ही अपना चरम लक्ष्य मानती है। अपनी अंतर्मुखी वृत्ति के कारण मानसिक इन्द्रियातीत व्यापारों को ये अपनी रागात्मकता में बांधकर सहज, स्वाभाविक तथा संवेद्य रूप में मूर्त कर देते हैं। वस्तुतः इनकी कविता की उत्स–भूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह में संश्लिष्ठ निविड़ आवेगों की ही प्रधानता है–

बिछी बिसात,
चलते हैं गोटियां
सत्ता के हाथ।
षह तो कभी मात,
घात कभी अघात।
उत्पात वही,
खेल वही सत्ता का,
वही चाल पासों की,
है षह–मात वही। [1]

ऐसा प्रतीत होता है कि इनको साहित्य–रचना में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। इन्होंने साहित्य को हृदय की आंख से देखा तथा उत्साह, स्मृति, प्रेम, भक्ति, नीति, निराशा आदि भावों की व्यंजना की। इनके साहित्य में जिस साहित्य–युक्त शैली का उपयोग करके सहृदय के मानस में उत्तेजनात्मक प्रवृत्ति जागृत करने की चेष्टा के साथ–साथ विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों एवं क्रियाओं का सुन्दर नियोजन किया है। विभिन्न नारी–पुरुष पात्रों पर अपनी भावनाओं का आरोपण करते समय इन्होने किसी बात को बलपूर्वक अंकित करने का प्रयास नहीं किया। वस्तुतः इन्होंने अपने 'आत्म' को इस प्रकार अपने साहित्य में घुला दिया है कि सहज रूप से उनका व्यक्तित्व पहचान में नहीं आता, मनोवैज्ञानिक अध्ययन से ही इस विषय में जानकारी प्राप्त होती है–

झूठ को ताज
और सच को सूली
मिलती आज।
दर्षक बनकर
देख रहा समाज।
घूम रहे हैं
धर्म–ध्वजा उठाये
कई पाखंडी,
धरा नाम भले ही
बबा, स्वामी या दंडी। [2]

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भावात्मक पक्ष का संबंध विषय–सामग्री एवं शैली दोनों से है। जब एक साहित्यकार सच्ची अनुभूति तथा भाव की समुचित प्रेरणा से प्रेरित हो साहित्य–रचना में प्रवृत्त होता है तो उसके विषय–प्रतिपादन एवं उसकी शैली में आकर्षक तत्वों का समावेश हो जाता है। कवि की भावात्मक, अनुभूति की व्यापक संवेदनशीलता के अनुसार ही उसके विषय–प्रतिपादन तथा शैली में वैशिष्ट्य का समावेश होता है, जैसा कि पीछे संकेत किया गया है।

शैली की स्वाभाविकता, सरसता तथा क्लिष्टता, दोनों ही माध्यम से व्यक्त हो सकती है। 'मानव' जी ने जहाँ स्वाभाविक शैली को अपनाया है वहाँ उन्होंने अभिध शब्द–शक्ति का भी आश्रय लिया है और क्लिष्ट–कथन में उन्होंने व्यंजना और लक्षणा को अपना लक्ष्य बनाया है। 'स्वाभाविकता' का अर्थ सरलता से नहीं जोड़ना चाहिए। स्वाभाविकता के कारण काव्य की शैली में अवरोध उत्पन्न नहीं होता तथा अर्थ की प्राप्ति सुगमता से होती है। अभिध शब्द–शक्ति का सम्बन्ध इसी स्वाभाविकता से है।

रामनिवास 'मानव' जी ने 'रस' पर प्रक्षेपण करने के कारण अपनी शैली में शब्द–शक्ति के तीनों भेदों को यथास्थान अपनाया है जिससे उनकी रचनाओं में स्वाभाविकता और क्लिष्टता के सहज गुण स्वाभाविक रूप में आ गए हैं। यह स्वाभाविकता सरलता के माध्यम से ही स्पष्ट हुई है–

सांझ ढली है
अब तो जीवन की,
हुआ अंधेरा।
अटकी अब सांसे,
कसा भय का घेरा। [3]

अपनी रमणीयता के कारण वाच्यार्थ रसास्वाद में सहायक होती ही है, किन्तु यदि इसको सूक्ष्मता प्रदान की जाये तो उससे भी रस की आस्वादनीयता में वृद्धि हो जाती है। अर्थगत यह सूक्ष्मता लक्षणा और व्यंजना से आती है। अभिध तो केवल साहित्य विषय का ग्रहण ही करा सकती है जबकि लक्षणा उसके मूर्त रूप की अपेक्षा उसके गुणों के निकट ले जाती है तथा व्यंजना से इन गुणों के अन्तःक्षेत्रा की झलक तक मिल जाती है। कहना न होगा कि अर्थ–बोध सम्बन्धी व्याघात से युक्त हुए भी लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ के सूक्ष्मताजन्य सौन्दर्य ने संस्कृत आचार्यों को क्रमशः लक्षणा और व्यंजना का महत्व स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने व्यंग्य प्रधन साहित्य को ध्वनि कहकर उसकी उत्कृष्टता की घोषणा की है। 'मानव' जी ने वाचक शब्दों का प्रयोग जिस सिद्धहस्तता के साथ किया है, लाक्षणिक और व्यंजक शब्दों के प्रयोग में भी उतनी ही पटुता दिखाई है। यदि यों कहा जाए कि ध्वनि तो इनके साहित्य की आत्मा है तो भी अत्युक्ति न होगी। उनके लाक्षणिक प्रयोग अधिकांश रूप में अलंकारिक हैं। ऐसे प्रयोगों का उल्लेख उनकी अप्रस्तुत योजना में किया जाएगा। यहाँ केवल ऐसे ही प्रयोगों का वर्णन होगा जिनसे केवल अनुभूति को स्पष्टता ही प्राप्त नहीं हुई, प्रत्युत उनमें मार्मिक सौन्दर्य अथवा ध्वनि भी विद्यमान है–

कभी तूफान,
सूखा तो बाढ़ कभी,
उजड़े खेत।
जाये कहां किसान?
बन्द हैं रास्ते सभी।
गिरवी घर,
खेत औ, खलिहान,
त्रस्त किसान।
चढ़ा है भारी कर्ज,
जीवन बना मर्ज। [4]

यहाँ कवि ने सरल शैली में अनेक भावों का प्रदर्शन किया है। यहाँ पर रस इत्यादि शब्दों की व्यंजनाएँ निकलती हैं। वे वास्तव में रस इत्यादि में हेतु हैं अतः उन्हीं के अर्थों की पूरक हैं। यहाँ पर व्यंजना निकलती है कि इस समय दुपहरी का आतप अत्यन्त असह्य है, कोई भी व्यक्ति इस समय बाहर निकलना नहीं चाहता। इस व्यंजनार्थ से एक दूसरी व्यंजना यह निकलती है कि हे प्रियतम, यह समय बाहर जाने का नहीं है, आओ हम लोग घर के अन्दर बैठकर ही सुरत क्रीड़ा का आनन्द लें। बिहारी के समान विक्रम ने भी ध्वनि को विशिष्ट महत्व प्रदान किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रायः 'मानव' जी ने उफहात्मक शैली को भी यत्रा–तत्रा अपने साहित्य में स्थान दिया है। वास्तव में ताल, लय, गति, छन्द और प्रवाह को बांधता है। वस्तुतः 'मानव' की शैली सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषतः चमत्कारपूर्ण होने में निहित है। यह चमत्कार विभिन्न रूपों में लक्षित होता है। चमत्कार–विधन के विविध रूपों में 'मानव' जी की शैली को न केवल आकर्षक, प्रौढ़ एवं भावानुकूल ही बनाया है अपितु अन्य शैलियों में एक विशिष्ट शैली को प्रोत्साहन दिया है। 'मानव' जी की शैली में जो सजीवता मिलती है वह अन्य रीतिकालीन कवियों में नहीं प्राप्त होती। अन्य शब्दों में व्यक्तित्व का पूर्णतः प्रस्पफुटन एवं उदात्तीकरण 'मानव' जी के साहित्य में पूर्ण रूप से उभर उठा है–

जिसने पढ़ा
जीवन को मन से,
वही तो कढ़ा।
पढ़कर किताबें
केवल बोझ बढ़ा।
मन्थन से ही
निकला है अमृत,
हर युग में।
मन्थन हो उर का
या क्षीर–सागर का। [5]

वस्तुतः इनकी आसक्ति और तजन्य प्रेम–भावना संयोग तथा वियोगद्ध बुद्धि की उपज न होकर वह इनके अचेतन द्वारा प्रत्यक्षीकृत है। इसी कारण इनकी उक्तियां इतनी प्रभावव्यंजक हो सकी हैं जो कि मानसिक कल्पना–तरंग का उन्नयन करती हैं। काम–वृत्ति की स्वस्थ पूर्ति जीवन के सहज–विकास के लिए आवश्यक है। साहित्य में काम–वृत्ति की अपूर्ति के क्षण ही अधिक चित्रित किए गए हैं। इस स्तर पर कामवृत्ति का प्रतिपफलन प्रथम आपूर्ति और द्वितीय अतिविकास के रूप में हुआ है वस्तुतः काम की अपूर्ति अनेक असमानताओं का आधार बनती है। काममूल्य की निषेधात्मक स्थिति ने जहां अभाव अकेलेपनद्ध को मूर्त किया है वहीं कामेच्छा–दमन ने जीवन–शैली को अव्यवस्थित करके उसे मनस्तापी बना दिया है–

ज्ञान का प्याला,
जीवन मधुषाला,

भक्ति की हाला।
प्रेम यमुना
और भक्ति है गंगा,
सन्त ने गुना। [6]

शरीर विज्ञानविज्ञ उनकी पहचान शारीरिक रोगों के रूप में करता है और एक मानस–चेता की भाषा में मन की सहज इच्छाएँ जब स्वाभाविक ढंग से पूरी नहीं हो पातीं तो बलपूर्वक दमित होकर अचेतन में प्रविष्ट हो कुंठाओं, मनोलक्षणों, चरित्रा–विकृतियों, मनोरोग–मनस्ताप, मनःस्नायु विकृति और मनोविक्षिप्तता के रूप में पनप उठती हैं। 'मानव' साहित्य में व्यक्तिजन्य विकृतियां प्रायः प्रेम कामद्ध संदर्भों से उद्भूत हैं। काम की अतृप्ति दमन ;अल्प विकासद्ध और अति विकास इनका मुख्य धरातल है। साहित्य में वैयक्तिक विवशता, टूटन–पीड़ा, विद्रोह, कुंठा, मानसिक तनाव, रुग्णता, अभिवृत्ति, कामेच्छा, अंतर्मन्थन, द्वंद्व, उन्माद, संत्रााास, वेदना, अवसाद, खिन्न मनस्कता, पलायन, आत्महीनता, दैन्य, दुश्चिन्ता, मनोग्रस्तता, आशा–भग्नाशा एवं भावात्मक प्रवृत्तियों को स्थान देकर साहित्य–शैली को एक नई दिशा प्रदान की। विवेच्य साहित्य में इन कवियों के चरित्रा का उद्घाटन मानव मन में दमित वासनाओं, अंतर्द्वंद्वों, अतृप्त काम की लक्ष्य प्रेरित एवं लक्ष्य विकृत स्थितियों, भूलों, स्वप्नों, प्रतीकों, दिवास्वप्नों, आत्म–भावना, प्रभुत्व–कामना, हीनभावना–ग्रंथि, काम–वासना के अंतर्गमन तथा बहिर्गमन, पलायन आदि की क्रिया–प्रतिक्रिया के संदर्भ में हुआ है–

किसी पन्थ में,
मिला न पूर्ण सत्य
किसी ग्रन्थ में।
भ्रमित सारे,
क्या मन्दिर–मस्जिद,
क्या गुरूद्वारे। [7]

कवि अपनी मानसिक अनुभूतियों को भाषा के द्वारा अभिव्यक्ति करता है। सामयिक परिवेश से गृहीत वस्तु–तत्व कवि की मानसिक संवेदना को उद्भासित तथा कल्पना को विकसित करते हैं। कल्पना एवं संवेदनात्मक भावों के आधार पर ही कवि अपने मानस भावों को आकार प्रदान करता है। भाषा द्वारा मनोगत भावों को मूर्त आधार दिया जाता है। मध्ययुग में परंपरागत आदर्शों के विघटन से उत्पन्न अव्यवस्था ने जनचेतना को परिवर्तित करने में अभूतपूर्व सहयोग दिया। जीवन के उस संक्रमण को पहचाना तथा अपने चिर–परिचित परिवेश की भाषा–शैली को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

इनकी साहित्य–शैली के सभी उपादान अनुभूति–स्पंदित हैं। यह अनुभूति एक ओर विशुद्ध वैयक्तिक है, दूसरी ओर इसके विविध विधान अभिव्यक्ति के स्तर पर अनुभूत–माध्यम की वेदना के परिणाम हैं। सृजन–प्रक्रिया का आंतरिक संघटन ही इन उपादानों के समन्वयन से संयोजित हुआ है–

जीवन का समान पेड़ हैं।
विधना का वरदान पेड़ हैं।
पात, फूल, फल, ईंधन देते,
धन–दौलत की खान पेड़ हैं। [8]

शास्त्रीय उपमाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग अनिवार्य ही था। वर्ण्य विषय से सम्बद्ध रति, मिलन, वियोग, संकेत, अभिसार, मान, सुख आदि पारिभाषिक शब्द भी तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं क्योंकि हिन्दी में ये शब्द सीधे संस्कृत से आए हैं। यहाँ पर कवि द्वारा प्रयुक्त कुछ तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों की सूची दी जाती है जिनमें कहीं–कहीं तो संस्कृत के शब्दों में किसी प्रकार का ध्वनि परिवर्तन न कर केवल संस्कृत की विभक्ति जोड़कर ही अर्ध तत्सम शब्दों की सृष्टि कर ली गई है और कहीं–कहीं संस्कृत शब्दों से बलात् तद्भव शब्दों की सर्जना की गई है। राजभाषा होने के कारण मुसलमानी शब्द जनता में इतने प्रचलित हो गए थे कि फारसी के प्राचीन संस्कृतजन्य शब्दों का पूर्णतया लोप हो गया।

निश्कर्श

डॉ0 रामनिवास 'मानव' की कविताओं में भाशा और षिल्प, दोनों ही स्तरों पर सहजता एवं सुघड़ता दिखाई देती है। इनका संपूर्ण साहित्य अनुभूत अंतःप्रक्रिया में पककर ही शैली के उपादानों में रूपांतरित हुआ। उसके सुनियोजन में इन कवियों की निष्ठाएं अभिवृत्तियां पीड़ा, दमन, मनोभ्रम, दिवास्वप्न, भावग्रंथि, चिन्ता, विभ्रम, अहम् भाव, प्रज्ञा, प्रेरणा तथा ऊब विशेष सक्रिय रही हैं। यह शैली एक ओर सृजन–व्यापार की आंतरिक चेतना से अनुप्राणित है तो दूसरी ओर रूपांतरण की बाह्य चेतना से भी सम्पन्न है। समग्रतः साहित्य–शैली सृजन की प्रक्रियात्मक परिणति है। इनका समस्त साहित्य–उपकरण अनुभूति अनुप्राणित और मानसिक संवेगों से स्पंदित है। साहित्य–शैली की समग्रता में कवि–व्यक्तित्व की उपस्थिति निर्विवाद है, अनुभूति पक्ष में उसका भोक्ता विद्यमान रहता है। अभिव्यक्ति पक्ष में उसका सर्जक उपस्थित रहता है। उसकी अपनी संवेदनाएँ, भावनाएँ, अनुभूत्यात्मक विकास चक्र में अपनी पार्थिवता से मुक्त हो शुद्ध अनुभूति बन जाती हैं जो विभिन्न प्रतीकों, बिम्बों तथा साहित्य–शैली में रूपांतरित तथा संघटित होती हैं। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं चिन्तन–प्रक्रिया भी है। अतः उसका कवि–व्यक्तित्व के अनुरूप होना वाँछनीय है। 'मानव' जी के साहित्य की भाषा–शैली इस दिशा में सफल रही। वह विभिन्न पात्रों के कुंठित गत्यात्मक रूप के अनुसार अपना रूपाकार पाकर परिस्थिति तथा मनःस्थिति के प्रकाशन में पूर्ण समर्थ हुई है।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 रामनिवास 'मानव', षब्द–षब्द संवाद, पृ0 20
2. डॉ0 रामनिवास 'मानव', षब्द–षब्द संवाद, पृ0 39
3. डॉ0 रामनिवास 'मानव', षब्द–षब्द संवाद, पृ0 48
4. डॉ0 रामनिवास 'मानव', षब्द–षब्द संवाद, पृ0 53
5. डॉ0 रामनिवास 'मानव', षब्द–षब्द संवाद, पृ0 69
6. डॉ0 रामनिवास 'मानव', मेहंदी रचे हाथ, पृ0 21
7. डॉ0 रामनिवास 'मानव', मेहंदी रचे हाथ, पृ0 16
8. डॉ0 रामनिवास 'मानव', मिलकर साथ चले, पृ0 51